International Journal of Applied Research 2016; 2(4): 757-759

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(4): 757-759
www.allresearchjournal.com
Received: 21-02-2016
Accepted: 27-03-2016

सोनी कुमारी
अतिथि प्राध्यापिका,
इतिहास–विभाग, डॉ. एस.के.एस. महिला महाविद्यालय, मोतिहारी, बिहार, भारत

Corresponding Author:
सोनी कुमारी
अतिथि प्राध्यापिका,
इतिहास–विभाग, डॉ. एस.के.एस. महिला महाविद्यालय, मोतिहारी, बिहार, भारत

भारतीय स्वतंत्रता के आरंभिक दशकों में दलित आंदोलन

सोनी कुमारी

सारांशः
भारतीय स्वाधीनता–संग्राम में दलितों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह संग्राम राष्ट्रव्यापी संग्राम था, जिसमें पूरे देशवासियों का योगदान समान रूप से है। यह अलग बात है कि इतिहासकारों ने दलितों की भूमिका को गौण कर दिया। लेकिन 15 अगस्त, 1947 ई. में जो आजादी मिली, उसकी पृष्ठभूमि बहुत पहले से तैयार हो रही थी। इस पृष्ठभूमि निर्माण में दलित–वर्गों ने जी–जान से सहयोग किया। डॉ० अम्बेदकर, पेरियार, ज्योतिबा फुले आदि ने जो मानसिकता निर्मित की है, उसी को लेकर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई लड़ी गयी और सफलता मिली है।

प्रस्तावनाः
15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता हासिल करने के साथ भारतीय समाज की पुनर्रचना के प्रयासों के एक विराट दौड़ का अंत हुआ। इस दौर में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की गई, अनेक अविस्मरणीय संघर्ष हुए, कइ प्रश्नों पर काफी जद्दोजहद के बाद सर्वानुमति बनी और नेतृत्व की एक नई पीढ़ी सामने आयी। तथापि औपनिवेशिक शासन ने इन प्रयासों और संघर्षों को आच्छादित कर रखा था। इस शासन के खात्मे के साथ वह कुहरा छँट गया और हमारे समाज के सारे अंदरूनी तनाव, संघर्ष, संशय तथा सामंजस्य सूर्य की जीवन दायिनी रोशनी में जगमगा उठे।
राष्ट्रीय आंदोलन के उपरान्त स्वतंत्रता भारतीय समाज की पुनर्रचना के एक नए दौर का, खुले एवं निवर्द्ध संघर्षों के एक लंबे दौर का प्रस्थान–बिन्दु थी। अंत आरंभ था। हमारा समाज एक ही साथ आह्लादित तथा आहत था, उसकी रंगों में गरम खून भी दौर रहा था और उसके शरीर पर जमे हुए खून के साथ जख्म भी थे।
भारतीय समाज की पुनर्रचना पर चिंतन–मंथन और उसके लिए कोशिशें काफी पहले शुरू हो चुकी थीं। इस पुनर्रचना के प्रश्न को केन्द्र कर कई वैचारिक–राजनीतिक धाराएँ जन्म ले चुकी थी और तीस का दशक आते–आते उन्होंने लगभग स्पष्ट शक्ल कर ली थी। तीस के दशक में स्वतंत्रता के बाद के भारत में होने वाले वैचारिक राजनीतिक संघर्षों की जमीन लगभग तैयार हो गई थी, विभाजन रेखाएँ खींची जा चुकी थीं। इसीलिए आगे बढ़ने से पहले उन पर एक संक्षिप्त नजर डालना कतई अप्रासंगिक नहीं होगा। यहाँ इन वैचारिक–राजनीतिक प्रवृतियों की समीक्षा करना तो संभव नहीं, लेकिन उनकी एक मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है–
गाँधीवादी वैचारिक राजनीतिक धारा थी। राष्ट्रीय आंदोलन की सर्वप्रमुख धारा। कुछेक पश्चिमी विचारकों का प्रभाव स्वीकार करते हुए गाँधी देशी विचार–परंपराओं से वेदांत, जैन/बौद्ध/सूफी–संत परंपरा से घनिष्ठ रूप से जुड़े थे। भारतीय समाज के विभिन्न समुदायों और हितों के समन्वय के साथ–साथ इस धारा ने कमजोर तथा दलित वर्गों के पक्ष में मजबूत दबाव बनाने का प्रयास किया। कांग्रेस से जुड़े रहते हुए और उससे परे जाते हुए पूरे देश में आश्रमों की श्रृंखला के जरिए एक नए सामाजिक नेतृत्व की पूरी प्रणाली विकसित की। इस प्रणाली ने अनेक राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं को जन्म दिया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में न मालूम कितने लोग इससे प्रभावित और प्रेरित हुए। इसने आंदोलन के नए–नए रूपों, अनेक रचनात्मक कार्यों, बोल–चाल, रहन–सहन, आदि सभी क्षेत्रों में सामाजिक राजनीतिक नेतृत्व की एक नितांत अनूठी पीढ़ी तैयार की जो स्वतंत्रता–आंदोलन की रीढ़ शक्ति बनी। अनेक आंदोलनों को भी हम नेतृत्व की इस शैली का अनुकरण करते पाते हैं।
सन् 1920 में 'यंग इंडिया' में लिखते हुए गाँधीजी ने भारतीय समाज की पुनर्रचना के लिहाज से दो अहम प्रश्नों दलित–प्रश्न और हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रश्नों का जिक्र किया। उनके अनुसार इन प्रश्नों के समाधान के बिना स्वराज दुर्लभ होगा। हमारा राष्ट्रीय आंदोलन दूसरे प्रश्न के समाधान में विफल रहा–परिणाम हुआ भयानक दंगों और आबादी के सबसे बड़े स्थानांतरण के बीच मिली आजादी। इस विफलता का साया भारतीय समाज पर आज तक छाया है।

पहले प्रश्न के समाधान की दिशा में स्वतंत्रता–आंदोलन के दौरान कुछ सफलता तो मिली, कुछ सर्वानुमति बनी, लेकिन उसका समाधान आज तक नहीं हुआ। दलित वर्गों की सत्ता में भागीदारी और उनके उत्थान के लिए उठाए। गए अनेक सामाजिक–आर्थिक कदमों के सत्तर वर्ष बाद भी उनके साथ सामाजिक भेद–भाव एवं अत्याचार की घटनाएँ इस बात की गवाह है।

नेहरूवादी समाजवादी धारा फेबियन समाजवाद और उदारवादी पश्चिमी लोकतंत्र से प्रभावित जवाहरलाल नेहरू ने भारत एक अपनी खोज के जरिए उसकी बहुलतावादी समन्वयकारी धारा से अशोक एवं अकबर की परंपरा से खुद को जोड़ा। उदारवादी जनतंत्र, जनवादी समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर भारतीय समाज की आधुनिक पुनर्रचना के वे प्रतिनिधि पुरुष बने।

बहरहाल, स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े बुद्धिजीवियों ने नेहरू की जो छवि गढ़ी, वह शायद नेहरू के भी गले नहीं उतरती। यथार्थ को दो विपरित ध्रुवों, सफेद–स्याह में बाँट कर देखने की दृष्टि से ग्रसित इन बुद्धिजीवियों ने नेहरु बनाम गाँधी, नेहरू बनाम सुभाष, नेहरू बनाम पटेल, नेहरू बनाम प्रसाद, आदि के जरिए नेहरू को एक मात्र आधुनिक, सेक्यूलर, जनवादी और समाजवादी घोषित कर राष्ट्रीय आंदोलन का अति समान्यीकरण करने और उसे एक अयामी बनाने की पूरी कोशिश की। नेहरू की यह छवि बाद में नेहरू–गाँधी वंशवाद की स्थापना में काफी मददगार साबित हुई। बहरहाल, राष्ट्रीय आंदोलन के महत्वपूर्ण नेताओं के साथ नेहरू की कभी–कभी मतभिन्नताएँ ही यथार्थ नहीं थीं। यथार्थ यह भी था कि नेहरू आजीवन इन सभी नेताओं के साथ मिलकर काम करते रहे, उनमें समानताएँ भी थीं और सहयोग की एक लंबी परंपरा थीं।

नेहरू के बोल–चाल रहन–सहन, कार्य–शैली आदि पर उनके विचारों का स्पष्ट असर था। अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित मध्यमवर्ग के एक बड़े तबके, पश्चिमी उदारवादियों तथा सामाजिक–जनवादियों के वे सबसे पसंदीदा राजनेता थे। उनके प्रधानमंत्री बनने में यह भी एक महत्वपूर्ण कारक था। सामाजिक न्याय की धारा। यह धारा तीस का दशक आते–आते दो स्पष्ट धाराओं में बँट चुकी थी। एक धारा दलित प्रश्न के समाधान के आधार पर भारतीय समाज की पुनर्रचना की हिमायती थी। दलित वर्ग इस धारा के सामाजिक आधार थे और इसके सशक्त प्रवक्ता थे डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर। यह धारा यूरोप, खासकर ब्रिटेन में प्रचलित विभिन्न संवैधानिक स्कूलों, फ्रांसीसी प्रबोध (एनलाइट–नमेंट) काल के कई विचारकों, उपयोगितावादी और कुछ हद तक समाजवादी तथा अराजकतावादी विचार शाखाओं से प्रेरणा ग्रहण करती थी।

भारतीय विचार परम्परा में यह बौद्ध मत तथा संत–परंपरा की श्रृंखला में खुद को देखती थी। ब्राह्मणवादी सामाजिक ढाँचे के खात्मे और उसकी जगह स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और समानता के आधार पर भारतीय समाज को पुनर्गठित करने की प्रक्रिया में यह दलित–वर्ग के लिए विशेष संरक्षण तथा प्रोत्साहन की हिमायती थी। भारत के विभिन्न अंचलों में चले अनेक सामाजिक आंदोलनों मालाबार में श्री नारायण गुरु, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले, महादेव गोविंद रानाडे, छत्रपति साहजी महराज, मद्रास में पेरियर, रामास्वामी नायकर उत्तर भारत में जनेऊ आंदोलन से लेकर कई छोटे–बड़े आंदोलन आदि की पृष्ठभूमि में यह धारा तीस के दशक में एक सशक्त वैचारिक राजनीतिक धारा बन चुकी थी। इस धारा से जुड़े कई नेता जैसे बिहार में जगजीवन राम, मद्रास में कामराज नाडर आदि तब महात्मा गाँधी और कांग्रेस के नेतृत्व से भी जुड़े थे। भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर थे और इसने दलित वर्गों को भारतीय संविधान के साथ भावनात्मक रूप से जोड़ने में बड़ी भूमिका निभाई सामाजिक न्याय की दूसरी धारा बिहार में यूँ तो तीस के दशक तक संगठित रूप ले चुकी थी। फिर भी एक सशक्त वैचारिक राजनीतिक प्रवृति के रूप में वह स्वतंत्रता के बाद ही सामने आई–लोहियावादी समाजवाद के रूप में ब्राह्मणवादी सामाजिक ढाँचे की आलोचना के साथ यह धारा पिछड़ी जातियों के उत्थान के आधार पर भारतीय समाज की पुनर्रचना का पक्षधर थी।

हिन्दुत्व की वैचारिक राजनीतिक धारा

यह धारा हिन्दुत्व के आधार पर भारतीय समाज की पुनर्रचना करना चाहती थी हिन्दू एकजुटता को आधार बनाते हुए। यह जाहिर है कि मुस्लिम तथा ईसाई समुदायों को अपना निशाना बनाती और उनके हिन्दूकरण पर जोर देती थी। तीस के दशक में ही विनायक दामोदर सावरकर इस धारा के प्रमुख विचार और सिद्धान्तकार के रूप में सामने आए। यह धारा भी उन दिनों यूरोप में प्रचलित उग्र राष्ट्रीयवादी विचार शाखाओं खासकर नाजीवाद से काफी प्रभावित थी और यह उसके संगठन के रूप कार्य–शैली पोशाक, रिलीजन और राष्ट्र की उनकी परिभाषा एवं समझ में अभिव्यक्त होता उन दिनों बिहार में हिन्दू–सभा एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से यह वैचारिक राजनीतिक धारा सक्रिय थी। हिन्दू–सभा तो पुरानी संस्था थी, लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना बिहार में 1938 में हुई–पटना मुख्यालय हुआ, तब संघ का आधार काफी सीमित था। उसके कई जिला प्रभारी भी नागपुर से भेज गए संगठक थे। एस.एस. हरकारे (मुजफ्फरपुर), ए.डी.बी. लोखंडे (गया शहर), रामकृष्ण भावे (चम्पारण), प्रभाकर राव पंचखरे (सारण), भास्करजी जिजार्दे (भागलपुर) मधुकर राव दवे (मुंगेर) वादडेकर (दरभंगा) आदि 1940 से 1944 के बीच इन जिला शाखाओं का गठन किया गया था। गया के मुख्य संगठक कृष्ण बल्लभ नारायण प्रसाद सिंह जिले के प्रमुख जमींदारों में थे। कट्टर सवर्ण उच्च जाति जमींदार, वकील, आदि इसके मुख्य सामाजिक आधार थे। बिहार के दलित नेताओं ने जहाँ धर्मांतरण का विराध किया था, वहीं वे जाहिर है, हिन्दू एकजुटता से भी काफी आशंकित थे। आगे भी दलित आंदोलन के संश्रय उदारवादी प्रगतिशील हिन्दुओं, समाजवादी तथा वामपंथी शक्तियों के साथ ही बना कम्युनिष्ट धारा। यह धारा वर्ग आधार पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मजदूर किसान संश्रय पर आधारित जनवादी क्रांति के जरिए भारतीय समाज में पुर्नरचना की हिमायती थी। यह धारा मार्क्सवाद–लेनिनवाद के अपनी मार्ग दर्शक विचारधारा मानती थी और भारतीय समाज में चली आ रही अवैदिक संप्रदायों और संत–परम्परा के कुछ हिस्सों के साथ खुद को जोड़ती थी। बिहार में 20 अक्टूबर 1939 को उसके आरंभिक नेता किसान सभा आंदोलन में सक्रिय थे। उन्हीं दिनों भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अपनी पुस्तक इंडियन सोशल पोलिटी में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर भारतीय समाज का विश्लेषण करने का प्रयास किया। आगे चलकर देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने मातृ–देवी परंपरा तथा लोकायत की गहन अनुशंसा की। उन दिनों दलित और पिछड़े आंदोलन के प्रति कम्युनिष्टों ने या तो अवहेलना की या फिर विघटनकारी आंदोलन के रूप में उसके विरोध का रूप ही अख्तियार किया था। इन आंदोलनों के प्रति एक समुचित कार्यनीति विकसित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

निष्कर्षः

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में दलित की उतनी ही भूमिका है, जितना गैर–दलितों की। अनेक दलित नायकों तथा वीरांगनाओं ने जी जीन पर खेलकर अपना बलिदान देकर राष्ट्र को आजादी दिलायी। यह अलग बात है कि इतिहास लेखकों ने इनके योगदान को नोटिश नहीं करते हुए उसके श्रेय को रेखांकित नहीं किया है।

संदर्भ–सूचीः

1. मिश्र गिरीश और पाण्डेय, ब्रज कुमार, बिहार में जातिवाद, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. डॉ. अम्बेडकर, बाबा साहेब, संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड– 16, नई दिल्ली, 2000
3. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति चौथी रिपोर्ट– 1996–97, 1997–98, खण्ड 11 बिहार गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
4. राय चौधरी, पी.सी., बिहार डिस्ट्रिक गजेटियर, दरभंगा, पटना, 1964
5. विभाग बिहार सरकार, वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदन– 2000–01